□ प्रवर्तक श्री विनयऋषि जी

[संस्कृत-प्राकृत के विद्वान्, विद्याप्रेमी, समाजसुधारक]

धर्म का सार्वभौम रूप

□

विश्व के विराट् सुनहले क्षितिज पर असंख्य अपरिमित धर्मों का उदय हो चुका है। प्रस्तुत दृश्यमय जगत पर भी धर्मों का अमिट प्रभाव परिलक्षित होता है। धर्म से ब्रह्माण्ड का कोई स्थान अछूता नहीं है और न उसके अभाव में किसी वस्तु के अस्तित्व की ही कल्पना की जा सकती है। विस्तृत संसार में धर्म विभिन्न नाम, रूपों में व्याप्त है। इस मनुपुत्र की धरती पर धर्मों का जाल-सा फैला हुआ है। प्रमुख रूप से एशिया, आफ्रिका, यूरोप, आस्ट्रेलिया, अमरिका आदि महाद्वीपों में प्रचलित धर्मों की संख्या तेरह के लगभग मानी गई है। मिसाल के तौर पर·····जैन, बौद्ध, हिन्दू, सिक्ख, पारसी, ईसाई, इस्लाम, कन्फ्युशियस, ताओ, शिन्तो, शैव, शाक्त-वैष्णव आदि प्रचलित धर्म हैं।

विश्व में प्रचलित धर्मों की यह तालिका संकीर्णता की सूचक है। वस्तुतः सभी धर्मों के प्रेरणा-स्रोत उनके प्रवर्तक संस्थापकों की व्यक्तिगत अन्तर्दृष्टियां हैं। अनुपम आध्यात्मिक अनुसंधान के द्वारा जो अन्तर्ज्योति उन्हें प्राप्त हुई, वही उन्होंने संसार के सामने प्रज्ज्वलित की।

धर्म एक अनुपम पुष्प है। सभ्य-असभ्य जातियों ने किसी-न-किसी रूप में इसे अपनाया है। किन्तु यह संकीर्णता धर्म के सार्वभौम रूप को विच्छिन्न कर देती है। हर धर्म का उदय सार्वभौम रूप में होता है, किन्तु आगे चलकर उसके प्रबल समर्थक उसे Limited रूप दे देते हैं। मानव-जीवन के हर क्षेत्र को जो धर्म प्रभावित कर सके, व्याप्त कर सके, भेद-भावों की दीवारें तोड़ सके, उसी में सार्वभौम पद की क्षमता निहित है।

प्रत्येक जिज्ञासु, साधक आत्मा में यह प्रश्न उपस्थित है कि धर्म का वह सार्वभौम रूप क्या है? उसकी परिभाषा क्या हो सकती है? इत्यादि अन्तर्मन में उठे हुए प्रश्न प्रत्युत्तर के लिए कटिबद्ध हैं। संसार भर के विचारकों, चिन्तकों, और ऋषि-मुनियों ने शाब्दिक एवं साहित्यिक परिभाषाएँ या व्याख्याएँ देने का एक स्तुत्य प्रयास किया है। उदाहरण के तौर पर शाब्दिक परिभाषा को हम देखें, जैसे—

'धिन्वनाद् धर्म' अर्थात् धिन्वन का अर्थ है धारणा या आश्वासन देना। **'धारणाद् धर्मः'** अर्थात् धारणा या दुःख से बचाना। **'ध्रियते येन स धर्मः'** अर्थात् जिसने इस विश्व को धारण किया है, वही धर्म है।

शाब्दिक व्याख्याओं की तरह साहित्यिक परिभाषाएं भी हमारे सामने पर्याप्त रूप में आती हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठाः'
धर्म समस्त जगत का आधार है।

—नारायण उपनिषद्

'चोदनालक्षोऽअर्थो धर्मः।' —आचार्य जैमिनी

'स एव श्रेयस्करः स एव धर्म शब्देनोच्यते'। —विश्वकोष मीमांसा

महाश्रमण तीर्थंकर भगवान महावीर ने धर्म की विशुद्ध अबाधित परिभाषा देते हुए कहा 'वत्थु सहावो धम्मो' वस्तु का जो स्वभाव है, वही उसका धर्म है। मिश्री का स्वभाव मीठा है, और इमली का खट्टा। संसार में जितनी भी वस्तुएँ हैं, उनका धर्म भी भिन्न-भिन्न है। यह भिन्न-भिन्न धर्म एक नहीं है।

पाश्चात्य विचारकों में से आधुनिक विद्वान प्रो० व्हाइटहेड के अनुसार—"धर्म वह क्रिया है जो व्यक्ति अपनी एकान्तता के साथ करता है।" मैथ्यु आर्नल्डः "मूलतः धर्म संवेगों से युक्त नैतिकता है।" किसी एक अन्य विचारक से जब धर्म की परिभाषा के विषय में पूछा तो उसने बताया कि 'Religion is the way of Life' धर्म, यह जीवन का मार्ग है।

हकीकत में धर्म मानवहृदय की उदात्त एवं निर्मल वृत्तियों की अभिव्यक्ति का ही नाम है। शरीर साम्प्रदायिक क्रियाकाण्ड का आधार हो सकता है, धर्म का नहीं। धर्म अन्तस्तल की चीज है, उसे केवल बाहर के विधि-निषेधों से ही जांचना, परखना अपने को ही भ्रमजाल में उलझाये रहना है। धर्म का निवास मनुष्य के मन में है। यह स्वयं मनुष्य के स्वभाव का एक अंग है। धर्म एक मानसिक अवस्था है, भक्ति का रूप है। धर्म की आत्मा अनुभव है। प्लेटो के अनुसार 'धर्म ही ज्ञान है।' चरित्रता का उत्कृष्टतम रूप धर्म है। नैतिकता के आधार पर धर्म अर्जित मानसिक प्रवृत्ति है। धर्म का अर्थ पूजा-पाठ नहीं है, बल्कि आत्मज्ञान और आत्मनिर्भरता ही धर्म है। धर्म प्रेरणाशक्ति है। धर्म मन्तव्य (मत-विचार) नहीं, बल्कि जीने का ढंग है। धर्म प्रकाश नहीं, किन्तु आत्मा का लक्ष्य है।

धर्म है मनुष्य के मन में रही हुई प्रेम की बूंद को सागर का रूप देने की साधना। धर्म-वेत्ताओं ने डंके की चोट कहा है 'तलवार से फैलने वाला धर्म, धर्म नहीं हो सकता और वह धर्म भी धर्म नहीं हो सकता कि जो सोना-चांदी के प्रलोभनों की चकाचौंध में पनपता हो। सच्चा धर्म वह है जो भय और प्रलोभनों के सहारे से ऊपर उठकर तपस्या और त्याग के, मैत्री और करुणा के निर्मल भावना रूपी शिखरों का सर्वाङ्गीण स्पर्श कर सके।

धर्म का एकमात्र नारा है—'हम आग बुझाने आये हैं, हम आग लगाना क्या जानें।' जिस धर्म का यह नारा नहीं है, वह धर्म, धर्म नहीं है। धर्म सब के साथ समानता, भ्रातृभाव तथा प्रेम का व्यवहार करना सिखाता है। दीन-दुःखियों की सेवा, सत्कार में लगाना सिखाता है। घृणा और द्वेष की आग को बुझाना सिखाता है। इसी प्रकार के धर्म से प्राणिमात्र के कल्याण की आशा की जा सकती है।

धर्म हमसे अनेक बोलियों में बात करता है। इसके विविध रंग-रूप हैं। फिर भी इसकी सच्ची आवाज एक ही है और वह है मानवीय दया और करुणा की, अनुकंपा की, धैर्ययुक्त प्रेम की, सत्य और असलियत की।

धर्म के सार्वभौम रूप की विस्तृत चर्चा-विचारणा के अनन्तर जब महाश्रमण भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित धर्म की ओर हमारी निगाह जाती है, तब इन सभी बातों का समावेश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसी में हम पाते हैं। अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह में धर्म की संपूर्ण विशेषताओं का पूर्णतया अन्तर्भाव हो जाता है। अहिंसा विश्व के समग्र चैतन्य को एक धरातल पर खड़ा कर देती है। वह सब प्राणियों में समानता पाती है। अहिंसा स्व और पर, अपने और पराये, घृणा एवं वैर की नींव पर खड़ी भेदरेखा को तोड़ देती है। अहिंसा स्वर्ग का साम्राज्य है। अहिंसा उज्ज्वल चरित्र के भविष्य का निर्माण है। अहिंसा जीवन की आधारशिला है। अहिंसा आत्मदीप-साधन की ज्योति है और आत्मनिर्भरता का वरदान है। अहिंसा भगवती की आराधना के लिए सूक्ष्म अहिंसा का परित्याग अत्यावश्यक माना गया है। ईसा मसीह ने भी अपने शिष्यों की यह कहकर Thou shalt not Kill "किसी भी प्राणी की हिंसा मत करो" सावधान किया है। यह ईसाई मत की जो दस आज्ञाएँ (Commands) हैं, उनमें से पाँचवीं है। सेन्ट ल्युकस लिखते हैं—Be kind to all creatures अर्थात् सभी प्राणियों पर दया करो। Be ye therefore merciful as your Father is merciful. अर्थात् जब तुम्हारे पिता दयावान हैं तब तुम भी दयावान बनो। सेन्ट ल्युकस इसी प्रकार न्यू टेस्टामेन्ट में लिखते हैं—Don't mingle thy pleasure of thy joy with the sorrow of the meanest thing that pells अर्थात् "अपने जरा से सुख के लिए दूसरों को मत सताओ।"

श्रमण भगवान महावीर का विश्वमैत्री-सूचक पावन सूत्र था—"मित्ती मे सव्वभूएसु वेर मज्झं न केणई" सचमुच भारत के आध्यात्मिक जगत का वह महान् एवं चिरन्तन सत्य उनके जीवन से साक्षात् साकार हो रहा है।

तुमं सि नाम तं चेव जं हंतव्वं ति मन्नसि,
तुमं सि नाम तं चेव जं अज्जावेयव्वन्ति मन्नसि,
तुमं सि नाम तं चेव जं परियावेयव्वंति मन्नसि ॥

—आचाराङ्ग सूत्र १-५-५

जिसे तू मारना चाहता है, वह तू ही है,
जिसे तू शासित करना चाहता है, वह तू ही है,
जिसे तू परिपात देना चाहता है, वह तू ही है।

स्वरूपदृष्टि से सब चैतन्य एक समान हैं। यह अद्वैत भावना ही अहिंसा का मूलाधार है।

"अहिंसा तस-थावर-सव्वभूय खेमंकरी।"

—प्रश्नव्याकरण सूत्र

अहिंसा त्रस-स्थावर (चर-अचर) सब प्राणियों का कुशलक्षेम करने वाली है।

इस प्रकार अहिंसा के अन्तर्गत सभी नैतिक, आध्यात्मिक, मैत्री, प्रमोद, करुणा, प्रेम, स्नेह, शुचिता, पवित्रता, उदारता आदि महद् गुणों का समावेश हो जाता है। इसीलिए हमारे दीर्घद्रष्टा एवं आत्मस्रष्टा ऋषि मुनियों ने "अहिंसा परमो धर्मः" कहकर अहिंसामय धर्म को ही विश्वकल्याण का आधारभूत तत्व माना है।

अहिंसा के बाद अपरिग्रह पर उतना ही बल दिया गया है। परिग्रह सब दुःखों की जड़ है। परिग्रह, मान्यताप्राप्त हिंसा है। "मुच्छा परिग्गहो" कहकर के भगवान महावीर ने मन की ममत्व दशा को ही परिग्रह बताया। परिग्रह का परिष्कार दान है। इसीलिए मुक्ति मंजिल के चार सोपानों में प्रथम सोपान दान कहा गया है। वैचारिक परिग्रह ही एकान्तवाद को जन्म देता है। अतः उससे भी विरत होने का प्रभु का आदेश है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीसरा मौलिक तत्त्व है—अनेकान्तवाद। वह वस्तुतः मानव का जीवनधर्म है। समग्र मानव-जाति का जीवनदर्शन है। संकुचित एवं अनुदार दृष्टि को विशाल और उदार बनाने वाला अनेकान्त ही है। परस्पर सौहार्द, सहयोग, सद्भावना एवं समन्वय का मूल प्राण है। अस्तु हम अनेकान्त-वाद को समग्र मानवता के सहज विकास की, विश्वजन-मंगल की धुरी भी कह सकते हैं।

अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह रूप धर्म ही विषमतापूर्ण विश्व की समाज-व्यवस्था में समता के नारे लगा सकता है। उपासना और कर्मकाण्ड में उलझा हुआ धर्म मानसिक समता की लौ प्रज्ज्वलित नहीं कर सकता। समता क्रिया है, अहिंसा प्रतिक्रिया; विषमता क्रिया है तो हिंसा प्रतिक्रिया। विज्ञान से विश्वशान्ति दूर है, धर्म से सन्निकट है। अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त रूप धर्म से ही जन-मन में मंगल की भावना परिव्याप्त होती है। अन्त में, धर्म का वास्तविक अर्थ है "अपने सर्वोच्च विकसित रूप में उच्चतम और अधिक मूल्यवान के प्रति पूर्णतया समर्पण।"

☆

आनन्द-वचनामृत

- ☐ जैसे आवश्यक खाद, धूप, हवा, पानी पाकर बीज में निहित विकासोन्मुख शक्ति का प्रस्फुटन होता रहता है, उसी प्रकार शिशु आत्मा में सुप्त विराट संस्कार अनुकूल वातावरण पाकर निखर उठते हैं।
- ☐ कारा (जेल) का बंधन अनचाहा होता है, इसलिए वह मनुष्य को त्रासदायक लगता है।
  दारा (पत्नी) बंधन का मनचाहा होता है, इसलिए वह मनुष्य को आह्लाददायक लगता है।
- ☐ कारा की कठोरता से भी दारा की कोमलता अधिक खतरनाक होती है।
- ☐ दीपक चाहे मिट्टी का हो, धातु का हो या सोने का, उसका महत्व उसकी काया से नहीं, बाती से है।
- ☐ साधक चाहे निम्न कुल का हो या उत्तम कुल का, उसका गौरव कुल या वर्ण के बाह्यरूप में नहीं, किंतु ज्ञान की जगमगाती ज्योति से है।
- ☐ तलवार का मूल्य उसकी धार में है, सितार का मूल्य झंकार में है, मां का मूल्य उसके प्यार में है, साधु का मूल्य उसके आचार में है।
- ☐ चपलता बालक का गुण है, युवक का दोष है।
- ☐ पुरुष का सौन्दर्य है पुरुषार्थ, नारी का सौन्दर्य है लज्जा।

☆

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org